।। ॐ श्रीपरमात्मने नमः ।।

309▲

भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय

गीताप्रेस गोरखपुर

GITA PRESS, GORAKHPUR [SINCE 1923]

जयदयाल गोयन्दका

309

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

जयदयाल गोयन्दका

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

॥ श्रीहरिः ॥

भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय

मनुष्य-जीवनका उद्देश्य भगवान्‌को प्राप्त करना है। शास्त्रों और सन्त-महात्माओंने इसके लिये अनेकों उपाय बतलाये हैं। अपने-अपने अधिकार और रुचिके अनुसार किसी भी शास्त्रोक्त उपायको निष्कामभावसे अर्थात् सांसारिक सुख-प्राप्तिकी कामनाको छोड़कर केवल भगवत्प्रीत्यर्थ काममें लानेसे यथासमय मनुष्य भगवत्‌को प्राप्त होकर अपने जन्म और जीवनको सार्थक कर सकता है। भगवान् श्रीमनु महाराजने धर्मके दस लक्षण बतलाये हैं, इन दस लक्षणोंवाले धर्मका निष्काम आचरण करनेवाला मनुष्य मायाके बन्धनसे छूटकर भगवान्‌को पा सकता है—

दस उपाय

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

(मनु० ६।९२)

अर्थात्—

धृति, क्षमा, शम, शौच, दम, विद्या, धी, अक्रोध।
सत्य, अचोरी धर्म दस, देते हैं मनु बोध॥

इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार समझना चाहिये—

१. ***धृति***—किसी प्रकारका भी संकट आ पड़नेपर या इच्छित वस्तुकी प्राप्ति न होनेपर धैर्यको न छोड़ना। जो धीरजको धारण किये रहता है, उसीका धर्म बचता है और वही लौकिक और पारलौकिक सफलता प्राप्त कर सकता है।

२. ***क्षमा***—अपने साथ बुराई करनेवालेको दण्ड देने-दिलानेकी पूरी शक्ति रहनेपर भी उसको दण्ड देने-दिलानेकी भावनाको मनमें भी

न लाकर उसके अपराधको सह लेना और उसका अपराध सदाके लिये मिट जाय, इसके लिये यथोचित चेष्टा करना, इसको क्षमा कहते हैं।

३. ***दम***—साधारणतः इन्द्रिय-निग्रहको दम कहते हैं, परन्तु इस श्लोकमें इन्द्रिय-निग्रह अलग कहा गया है, इससे यहाँ 'दम' शब्दसे शमको अर्थात् मनके निग्रहको लेना चाहिये। मनको वशमें किये बिना भगवत्प्राप्ति प्रायः असम्भव है (गीता ६। ३६)। भगवान्‌ने अभ्यास और वैराग्यसे मनका वशमें होना बतलाया है (गीता ६। ३५)।

४. ***अस्तेय***—मन, वाणी, शरीरसे किसी प्रकारकी चोरी न करना।

५. ***शौच***—बाहर और भीतरकी शुद्धि—सत्यतापूर्वक शुद्ध व्यापारसे द्रव्यकी, उसके अन्नसे आहारकी, यथायोग्य बर्तावसे आचरणोंकी और जल, मिट्टी आदिसे की जानेवाली शरीरकी शुद्धिको बाहरकी शुद्धि कहते हैं। एवं राग-द्वेष, दम्भ-कपट तथा वैर-अभिमान आदि विकारोंका नाश होकर अन्तःकरणका स्वच्छ हो जाना भीतरकी शुद्धि कहलाती है।

६. ***इन्द्रिय-निग्रह***—(दम) इन्द्रियोंको उनके विषय, रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्शमें इच्छानुसार न जाने देकर अनिष्टकारी विषयोंसे हटाये रखना और कल्याणकारी विषयोंमें लगाना।

७. ***धी (बुद्धि)***—सात्त्विकी श्रेष्ठ बुद्धि, जो सत्संग, सत्-शास्त्रोंके अध्ययन, भगवद्भजन और आत्मविचारसे उत्पन्न होती है तथा जिससे मन परमात्मामें लगता है और यथार्थ ज्ञान उत्पन्न होता है।

८. ***विद्या***—वह अध्यात्मविद्या, जिसको भगवान्‌ने अपना स्वरूप बतलाया है और जो मनुष्यको अविद्यासे छुड़ाकर परमात्माके परम-पदको प्राप्त कराती है।

९. ***सत्य***—यथार्थ और प्रिय भाषण। अन्तःकरण और इन्द्रियोंसे जैसा निश्चय किया हो, वैसा ही प्रिय शब्दोंमें कहना तथा यह ध्यानमें रखना कि इससे किसी निर्दोष प्राणीका नुकसान तो नहीं हो जायगा। सत्य वही है, जो यथार्थ हो, प्रिय हो, कपटरहित हो और किसीका अहित करनेवाला न हो।

१०. *अक्रोध*—अपनी बुराई करनेवालेके प्रति भी मनमें किसी प्रकारसे क्रोधका विकार न होना। अक्रोध और क्षमामें यही भेद है कि अक्रोधसे तो कोई क्रिया नहीं होती, जो कुछ होता है, मनुष्य सब सह लेता है, मनमें विकार पैदा नहीं होने देता, परन्तु इससे हमारी बुराई करनेवालेका अपराध क्षमा नहीं होता, उसका फल उसे न्यायकारी ईश्वरके द्वारा लोक-परलोकमें अवश्य मिलता है। क्षमामें उसका अपराध भी क्षमा हो जाता है।*

नौ उपाय

उपर्युक्त दस उपायोंको काममें न ला सकें तो निम्नलिखित नवधा भक्तिके नौ साधनोंसे परमात्माको प्राप्त करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। नवधा भक्ति यह है—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

(श्रीमद्भा० ७। ५। २३)

अर्थात्—

श्रवण, कीर्तन, स्मरण नित, पदसेवन भगवान।
पूजन, वन्दन, दास्य-रति, सख्य, समर्पण जान॥

१. *श्रवण*—भगवान्‌के चरित्र, लीला, महिमा, गुण, नाम तथा उनके प्रेम एवं प्रभावकी बातोंका श्रद्धापूर्वक सदा सुनना और उसीके अनुसार आचरण करनेकी चेष्टा करना, श्रवण-भक्ति है। श्रीमद्भागवतके श्रवणमात्रसे धुन्धुकारी-सरीखा पापी तर गया था। राजा परीक्षित् आदि इसी श्रेणीके भक्त माने जाते हैं।

२. *कीर्तन*—भगवान्‌की लीला, कीर्ति, शक्ति, महिमा, चरित्र, गुण, नाम आदिका प्रेमपूर्वक कीर्तन करना कीर्तन-भक्ति है। श्रीनारद,

* इन दस धर्मोंका विस्तार देखना तथा मनको वशमें करनेकी विधि जाननी हो तो गीताप्रेससे 'मानव-धर्म' और 'मनको वश करनेके कुछ उपाय' नामक पुस्तकें मँगवाकर जरूर पढ़िये।

व्यास, वाल्मीकि, शुकदेव, चैतन्य आदि इसी श्रेणीके भक्त माने जाते हैं।

३. ***स्मरण***—सदा अनन्यभावसे भगवान्‌के गुणप्रभावसहित उनके स्वरूपका चिन्तन करना और बारम्बार उनपर मुग्ध होना स्मरण-भक्ति है। श्रीप्रह्लादजी, श्रीध्रुवजी, भरतजी, भीष्मजी, गोपियाँ आदि इस श्रेणीके भक्त हैं।

४. ***पादसेवन***—भगवान्‌के जिस रूपकी उपासना हो, उसीका चरण-सेवन करना या भूतमात्रमें परमात्माको समझकर सबका चरण-सेवन करना। श्रीलक्ष्मीजी, श्रीरुक्मिणीजी, श्रीभरतजी इस श्रेणीके भक्त हैं।

५. ***पूजन***—अपनी रुचिके अनुसार भगवान्‌की किसी मूर्ति-विशेषका या मानसिक* स्वरूपका नित्य भक्तिपूर्वक पूजन करना। विश्वभरके सभी प्राणियोंको परमात्माका स्वरूप समझकर उनकी सेवा करना भी अव्यक्त भगवान्‌की पूजा है। राजा पृथु, अम्बरीष आदि इसी श्रेणीके भक्त हैं।

६. ***वन्दन***—भगवान्‌की मूर्तिको या विश्वभरको भगवान्‌की मूर्ति समझकर प्राणी-मात्रको नित्य प्रणाम करना वन्दन-भक्ति है। श्रीअक्रूर आदि वन्दन-भक्त गिने जाते हैं।

७. ***दास्य***—श्रीपरमात्माको ही अपना एकमात्र स्वामी और अपनेको उनका नित्य दास समझकर किसी भी प्रकारकी कामना न रखते हुए, श्रद्धाभक्तिके साथ नित्य नये उत्साहसे भगवान्‌की सेवा करना और उस सेवाके सामने मोक्ष-सुखको भी तुच्छ समझना। श्रीहनुमान्‌जी, श्रीलक्ष्मणजी आदि इस श्रेणीके भक्त हैं।

८. ***सख्य***—श्रीभगवान्‌को ही अपना परम हितकारी, परम सखा मानकर दिल खोलकर उनसे प्रेम करना। भगवान् अपने सखा-मित्रका

* मानसिक पूजनकी विधि जाननी हो तो गीताप्रेससे प्रकाशित 'श्रीप्रेमभक्तिप्रकाश' नामक पुस्तक मँगवाकर अवश्य पढ़नी चाहिये।

छोटे-से-छोटा काम बड़े हर्षके साथ करते हैं। श्रीअर्जुन, उद्धव, सुदामा, श्रीदाम आदि इस श्रेणीके भक्त हैं।

९. ***आत्मनिवेदन या समर्पण***—अहंकाररहित होकर अपना सर्वस्व श्रीभगवान्‌के अर्पण कर देना। महाराजा बलि, श्रीगोपियाँ आदि इस श्रेणीके भक्त हैं।*

आठ उपाय

उपर्युक्त नौ उपायोंसे काम न लें तो महर्षि पतंजलि-कथित अष्टांगयोगके आठ साधनोंको काममें लानेसे भगवत्-प्राप्ति हो सकती है। वे आठ साधन ये हैं—

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽ-ष्टावङ्गानि। (योग० सा० २९)

अर्थात्—

यम नियमासन साधकर, प्राणायाम विधान।
प्रत्याहार सु-धारणा ध्यान समाधि बखान॥

१. ***यम***—यम पाँच हैं—

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः॥ (योग० सा० ३०)

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।

(क) मन, वाणी, शरीरसे किसी प्राणीकी हिंसा न करनी, न करवानी और न समर्थन करना। लोभ, मोह या क्रोधसे किसी प्रकार किसीको किंचित् भी कष्ट न पहुँचाना अहिंसा कहलाती है।

(ख) जैसा कुछ देखा-सुना-समझा हो, वैसा ही पराये हितकी दृष्टि रखकर यथार्थ कहना सत्य है।

---

* नवधा भक्तिका विशेष विस्तार देखना हो तो गीताप्रेससे प्रकाशित 'तुलसी-दल' नामक पुस्तक मँगवाकर उसके 'भक्ति-सुधा-सागर-तरंग' नामक अध्यायको पढ़ना चाहिये।

(ग) मन, वाणी, शरीरसे कभी दूसरेकी किसी भी वस्तुपर अधिकार न जमाना अस्तेय है।

(घ) आठ प्रकारके मैथुनोंका सर्वथा त्याग करना ब्रह्मचर्य है।*

(ङ) भोग्य-वस्तुओंका सर्वथा संग्रह नहीं करना अथवा ममता-बुद्धिसे किसी भी भोग्य-वस्तुका संग्रह न करना अपरिग्रह है।

अहिंसावृत्तिका पूर्ण पालन होनेसे उसके निकट रहनेवाले हिंसक पशुओंमें भी हिंसावृत्ति नहीं रहती। (२। ३५)

सत्यका व्रत पूरा पालन होनेपर जो कुछ भी कहा जाय वही सत्य हो जाता है, उसकी वाणी कभी व्यर्थ नहीं जाती। (२। ३६)

अस्तेय-व्रतकी पूर्ण पालना होनेसे सारे रत्नोंपर उसका अधिकार हो जाता है।

ब्रह्मचर्यकी पूर्ण प्रतिष्ठा होनेसे वीर्य यानी शारीरिक और मानसिक महान् पराक्रमकी प्राप्ति होती है। (२। ३८)

अपरिग्रहके पूर्ण पालनसे जन्मान्तरकी बातें जानी जा सकती हैं। (२। ३९)

२. ***नियम***—नियम भी पाँच हैं—

शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।

(योग० सा० ३२)

शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान।

(क) मिट्टी, जल आदिसे शरीरकी और शुद्ध व्यापार और आचरणोंसे आहार-व्यवहारकी शुद्धि और राग-द्वेषादिके त्यागसे भीतरकी शुद्धि—यह शौच है।

(ख) भगवत्कृपासे जो कुछ भी प्राप्त हो जाय उसीमें सन्तुष्ट होना यह सन्तोष है।

(ग) धर्म-पालनके लिये कष्ट सहन करना या कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रत करना अथवा शीतोष्णादि सहना तप है।

* ब्रह्मचर्यका पूर्ण विवरण गीताप्रेससे प्रकाशित 'ब्रह्मचर्य' नामक पुस्तकमें पढ़ें।

(घ) वेद, उपनिषद्, गीता और ऋषिप्रणीत शास्त्रोंका अध्ययन, गायत्री आदि मन्त्र और भगवन्नामका जप स्वाध्याय कहलाता है।

(ङ) भगवान्‌को सर्वस्व अर्पण करना और उन्हींके परायण हो जाना, ईश्वर-प्रणिधान है।

बाह्य शौचके पूर्ण पालनसे अपने शरीरपर घृणा हो जाती है और दूसरेके संसर्गमें वैराग्य हो जाता है। आन्तरिक शौचसे चित्तकी शुद्धि, मनकी प्रसन्नता, एकाग्रता, इन्द्रियोंपर विजय और आत्मदर्शनकी योग्यता प्राप्त हो जाती है। (२।४०-४१)

सन्तोषके पूर्ण धारणसे सर्वोत्तम सुखकी प्राप्ति होती है। (२।४२)

तपके द्वारा अशुद्धिका नाश होकर अणिमा, लघिमा आदि शरीरकी और दूरदर्शन-श्रवण आदि इन्द्रियोंकी सिद्धि प्राप्त होती है। (२।४३)

स्वाध्यायसे अपने इष्टदेवताके दर्शन होते हैं। (२।४४)

ईश्वर-प्रणिधानसे समाधिकी सिद्धि होती है। (२।४५)

३. ***आसन***—स्थिरभावसे अधिक कालतक बैठनेका नाम आसन है। सिद्धासन, पद्मासन, सुखासन आदि अनेक आसन होते हैं। आसनकी सिद्धिसे शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वोंसे पीड़ा नहीं होती।

४. ***प्राणायाम***—श्वास-प्रश्वासकी गतिको रोकनेका नाम प्राणायाम है। रेचक, पूरक और कुम्भक नामक तीन प्रकारके प्राणायाम होते हैं, प्राणायामका अभ्यास गुरुसे सीखकर करना चाहिये। प्राणायामके अभ्याससे प्रकाशका आवरण यानी ज्ञानको ढक रखनेवाला पर्दा क्षय हो जाता है। मनकी शक्ति धारणाके योग्य हो जाती है।

५. ***प्रत्याहार***—अपने-अपने विषयोंके साथ सम्बन्ध न रहनेपर इन्द्रियोंका चित्तके अनुसार हो जाना इसका नाम प्रत्याहार है। प्रत्याहारसे इन्द्रियोंपर पूर्ण विजय मिल जाती है।

६. ***धारणा***—एक देशमें चित्तको रोकनेका नाम धारणा है।

७. *ध्यान*—चित्तवृत्तिके ध्येय पदार्थमें तैल-धारावत् एकतान स्थिर रहनेका नाम ध्यान है।*

८. *समाधि*—ध्यानकी परिपुष्टि होनेसे ध्याता, ध्यान और ध्येयकी त्रिपुटी मिटकर एकता हो जाती है, तब उसे समाधि कहते हैं। समाधि सबीज और निर्बीज-भेदसे दो प्रकारकी है, सबीजमें त्रिपुटीके न रहनेपर भी सूक्ष्म संस्कार रहते हैं और निर्बीजमें सूक्ष्म संस्कारोंका भी अत्यन्त निरोध हो जाता है।

सात उपाय

उपर्युक्त आठ उपायोंका आचरण न हो तो निम्नलिखित सात उपायोंके अनुसार निष्काम आचरण करनेसे भगवत्-प्राप्ति हो सकती है।

इस असार संसारमें सात वस्तु हैं सार।
संग, भजन, सेवा, दया, ध्यान, दैन्य, उपकार॥

१. *संग*—संगसे यहाँ सत्संगसे तात्पर्य है। भगवत्-प्रेमी महात्मा पुरुषों और सत्-शास्त्रोंके संगसे मनुष्यको जो लाभ होता है वह अवर्णनीय है। भगवान्‌की महत्ता सत्संगसे ही जानी जाती है। सत्संगसे ही जीवका अज्ञानान्धकार दूर होता है। गोसाईंजी महाराज कहते हैं—

बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥
तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥

इसी प्रकार श्रीमद्भागवतमें शौनकादि ऋषि कहते हैं—

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
भगवत्संगिसंगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः॥

(१।१८।१३)

* ध्यानके सम्बन्धमें विशेष बातें जाननी हों तो 'कल्याणप्राप्तिके उपाय' नामक पुस्तक देखना चाहिये।

'हम एक क्षणभरके भगवत्प्रेमियोंके संगकी तुलनामें मनुष्योंके लिये स्वर्ग या मोक्षको भी तुच्छ समझते हैं तब अन्य सांसारिक वस्तुओंकी तो बात ही क्या है?' भगवान् स्वयं श्रीउद्धवसे कहते हैं—

न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा॥
व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः।
यथावरुन्धे सत्संगः सर्वसंगापहो हि माम्॥

(श्रीमद्भा० ११।१२।१-२)

'हे उद्धव! सारी सांसारिक आसक्तियोंको नाश करनेवाले सत्संगके द्वारा जिस प्रकार मैं पूरी तरह वशमें होता हूँ, उस प्रकार योग, सांख्य, धर्म, स्वाध्याय, तप, त्याग, यागादि वैदिक कर्म, कुएँ-बावड़ी बनाने और बाग लगाने, दान-दक्षिणा, व्रत, यज्ञ, वेदाध्ययन, तीर्थयात्रा, नियम, यम आदि किसी भी साधनसे नहीं होता।'

परन्तु सत्संगके लिये साधु कैसे होने चाहिये, इस बातपर भी विचार करना आवश्यक है। श्रीमद्भगवद्गीताके दूसरे अध्यायमें स्थितप्रज्ञ पुरुषोंके, बारहवें अध्यायमें भक्तोंके, चौदहवेंमें गुणातीत पुरुषोंके जो लक्षण बतलाये गये हैं, वैसे लक्षण न्यूनाधिकरूपसे जिन पुरुषोंमें घटते हों, वे ही वास्तविक सन्त पुरुष हैं। श्रीमद्भागवतमें सन्तोंके लक्षण बतलाते हुए श्रीकपिलदेवजी महाराज अपनी मातासे कहते हैं—

तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनाम्।
अजातशत्रवः शान्ताः साधवः साधुभूषणाः॥
मय्यनन्येन भावेन भक्तिं कुर्वन्ति ये दृढाम्।
मत्कृते त्यक्तकर्माणस्त्यक्तस्वजनबान्धवाः॥
मदाश्रयाः कथा मृष्टाः शृण्वन्ति कथयन्ति च।
तपन्ति विविधास्तापा नैतान्मद्गतचेतसः॥
त एते साधवः साध्वि सर्वसंगविवर्जिताः।
संगस्तेष्वथ ते प्रार्थ्यः संगदोषहरा हि ते॥

(श्रीमद्भा० ३।२५।२१—२४)

'हे माता! जो द्वन्द्वोंको सहन करते हैं, दयालु हैं, सब भूतप्राणियोंके निःस्वार्थ प्रेमी हैं, शान्त हैं, जिनके कोई भी शत्रु नहीं है, शील ही जिनका भूषण है, जो मुझ भगवान्‌में अनन्य और दृढ़भावसे भक्ति करते हैं, जिन्होंने मेरे लिये समस्त कर्मों और स्वजन-बान्धवोंके ममत्वको भी त्याग दिया है, जो मेरे ही आश्रित हैं, मेरी कथाको मधुर समझनेवाले हैं, नित्य मेरी ही कथा कहते-सुनते हैं, ऐसे मुझमें लगे हुए चित्तवाले वे साधु त्रिविध तापोंसे पीड़ित नहीं होते। ऐसे वे साधु समस्त आसक्तियोंसे रहित होते हैं और वे ही आसक्तिके दोषका नाश कर सकते हैं, अतएव हे साध्वि! उन्हींका संग करना चाहिये।'

इसलिये हजार काम छोड़कर भी सदा प्रेमसे और श्रद्धासे सत्संग करना चाहिये।

२. *भजन*—गोसाईंजी महाराज कहते हैं—

बारि मथें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल॥

बात भी ठीक है। संसारसे तरनेके लिये भगवान्‌का भजन ही मुख्य है। भजनके पीछे सारे गुण आप ही आ जाते हैं। ध्रुव, प्रह्लाद, मीरा आदि भक्तोंको भजनके ही प्रतापसे भगवान्‌ने दर्शन देकर कृतार्थ किया था।

३. *सेवा*—सेवा मनुष्यका मुख्य धर्म है। सारे संसारको भगवान्‌का स्वरूप समझकर मन, वाणी, शरीरसे अभिमान छोड़कर सबकी निःस्वार्थ सेवा करनी चाहिये। जिसकी सेवा करनेका मौका मिले, उसका और भगवान्‌का अपने ऊपर उपकार मानना चाहिये; क्योंकि उसने हमारी सेवा स्वीकार करके और भगवान्‌ने सेवाका अवसर प्रदान करके हमारा बड़ा उपकार किया। सेवा करके किसीपर एहसान नहीं करना चाहिये तथा सेवा स्वीकार करनेवालेको कभी छोटा नहीं समझना चाहिये।

४. *दया*—दुःखी प्राणीके दुःखको देखकर हृदयका पिघल जाना और उसका दुःख दूर करनेके लिये मनमें भाव उत्पन्न होना दया कहलाता है। अहिंसा अक्रिय है और दया सक्रिय है। अहिंसामें केवल हिंसासे बचना है, परन्तु दयामें दूसरेको सुख पहुँचाना है। जिस मनुष्यके दिलमें दया नहीं, उसका हृदय पाषाणके समान है। गरीब, अनाथ, अपाहिज, रोगी, असहाय जीवोंपर दया करके जीवनको सफल करना चाहिये। चैतन्य महाप्रभुने तो तीन ही बातोंमें अपना उपदेश समाप्त किया है—

नामे रुचि, जीवे दया, वैष्णव-सेवन।
इहा छाड़ा आर नाहिं जानि सनातन॥

'हे सनातन! भगवान्‌के नाममें रुचि, जीवोंपर दया और भक्तोंका संग—इन तीनके सिवा मैं और कुछ भी नहीं जानता।'

५. *ध्यान*—ध्यान तो ईश्वर-प्राप्तिकी कुंजी है। ध्यान करनेकी कोशिश करनेपर अभ्यास न होनेके कारण पहले-पहले मन ऊबता है तथा घबराता है, परन्तु यदि दृढ़ निश्चयके साथ रोज-रोज नियमितरूपसे ध्यानका अभ्यास किया जाय तो मन ध्यानका अभ्यासी बन जाता है, फिर ध्यानमें जो आनन्द आता है, वैसा आनन्द अन्य किसी कार्यमें नहीं आता। इसलिये नित्यप्रति दृढ़ निश्चयके साथ अपने इष्टदेवके ध्यानका अभ्यास अवश्य करना चाहिये। ध्यान सबसे बढ़कर उपाय है।

६. *दैन्य*—अभिमान ही मनुष्यको गिरानेवाला है, यदि मनुष्य विनयी हो जाय, परमात्माके सामने दीन बन जाय तो दीनबन्धु उसपर अवश्य दया करते हैं, इसलिये वक्रता और ऐंठको छोड़कर दीनता धारण करनी चाहिये।

७. *उपकार*—भागवतमें लिखा है—

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनं द्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्॥

अठारह पुराणोंमें व्यासके दो ही वचन हैं—परोपकार पुण्यका हेतु है और परपीडन पापका हेतु है। गोसाईंजी महाराज भी कहते हैं—

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥
परहित बस जिन्ह के मन माहीं।
तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥

अतएव अभिमान, स्वार्थ और कामनाको छोड़कर निरन्तर परोपकारमें रत रहना चाहिये।

छः उपाय

उपर्युक्त सात उपायोंके अनुसार न चला जाय तो नीचे लिखे छः उपायोंका अनुसरण करना चाहिये। इन्हींके निष्काम आचरणसे भगवत्प्राप्ति हो सकती है—

सन्ध्या, पूजा, यज्ञ, तप, दया, सु-सात्त्विक दान।
इन छः के आचरणसे निश्चय हो कल्यान॥

१. *सन्ध्या*—द्विजातिमात्रको नित्य त्रिकाल-सन्ध्या करनी चाहिये। त्रिकाल न हो सके तो प्रातःकाल और सायंकाल दो समय तो सन्ध्या अवश्य ही करें। सन्ध्याके द्वारा परमात्माकी—सूर्य, अग्नि और जलरूपसे उपासना होती है। मनु महाराज कहते हैं—

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः॥

(२।१०३)

'जो द्विज प्रातःकाल और सायंकालकी सन्ध्योपासना नहीं करता, उसे द्विजजातिके सारे कार्योंसे शूद्रकी तरह दूर रखना चाहिये।'

अतः सन्ध्योपासन कभी छोड़ना नहीं चाहिये। सूतक आदिके समय या रेल वगैरहमें मानसिक सन्ध्या कर लेना उचित है। सन्ध्या ठीक समयपर करनी चाहिये।

सन्ध्याका समय यह है—

उत्तमा तारकोपेता मध्यमा लुप्ततारका।
कनिष्ठा सूर्यसहिता प्रातःसन्ध्या त्रिधा स्मृता॥
उत्तमा सूर्यसहिता मध्यमा लुप्तभास्करा।
कनिष्ठा तारकोपेता सायंसन्ध्या त्रिधा स्मृता॥

(देवीभाग० ११।१६।४-५)

'प्रातःकालकी सन्ध्या तीन प्रकारकी है, तारा रहते उत्तम, तारे अदृश्य हो जानेपर मध्यम और सूर्य उदय होनेपर कनिष्ठ, इसी प्रकार सायं-सन्ध्या भी तीन प्रकारकी है। सूर्य रहते उत्तम, सूर्य छिप जानेपर मध्यम और तारे उदय होनेपर कनिष्ठ।'

प्रातःकाल सूर्यदेवके रूपमें भगवान् हमारे प्रदेशमें पधारते हैं और सायंकाल दूसरे प्रदेशके लिये जाते हैं। जैसे हम अपने किसी पूज्य सम्मान्य अतिथिके हमारे घरपर आनेके समयसे पूर्व ही उसके स्वागतकी तैयारी करते हैं, स्टेशनपर पहलेहीसे पहुँचकर उसके सम्मान-सत्कारके लिये पुष्पहार आदि लेकर उसका अभिवादन करनेके लिये खड़े रहते हैं और उसके जानेके समय पहलेहीसे सारा प्रबन्धकर ठीक समयपर उसके साथ स्टेशनतक जाते हैं, इसी प्रकार सन्ध्याके द्वारा भगवान् सूर्यदेवका अभिवादन किया जाता है, जो ठीक समयपर ही होना चाहिये। सन्ध्योपासनासे सारे पाप दूर होते हैं और इसीसे अन्तमें भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है। यदि हम जीवनभर नियमपूर्वक सूर्यदेवकी दोनों समय निष्कामभावसे अभ्यर्थना करेंगे तो हमारे मरनेपर सूर्यदेवको भी हमारी मुक्तिके लिये सहायता करनेको बाध्य होना पड़ेगा। शास्त्रमें कहा है—

सन्ध्यामुपासते ये तु सततं संशितव्रताः।
विधूतपापास्ते यान्ति ब्रह्मलोकं सनातनम्॥

'जो द्विज सदाचारपरायण होकर नित्य सन्ध्योपासन करते हैं, वे सारे पापोंसे छूटकर सनातन ब्रह्मपदको पाते हैं।'

२. ***पूजा***—भगवन्मूर्तिकी बाह्य या मानसिक पूजा नित्य-नियमपूर्वक सबको करनी चाहिये। स्त्रियों और बालकोंके लिये घर-घरमें भगवान्‌की मूर्ति या चित्रपट रखकर पूजाकी व्यवस्था होनी चाहिये। स्त्री-बच्चे घरमें भगवान्‌की पूजा करते रहेंगे तो उनके संस्कार अच्छे होंगे। भगवान्‌में भक्ति उत्पन्न होगी। मीराबाई, धन्ना जाट आदि भक्तगण इसी प्रकार पूजासे परम भक्त हो गये थे।

३. ***यज्ञ***—श्रीमद्भगवद्गीतामें तो अनेक प्रकारके यज्ञ बतलाये हैं। जिनमें भगवान्‌ने जप-यज्ञको तो अपना स्वरूप ही बतलाया है। '**यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि**' (१०। २५) इसलिये भगवान्‌के नामका जप तो सभीको करना चाहिये। २१,६०० श्वास मनुष्यको प्रायः रोज आते हैं, इसलिये इतने नामोंका जप तो जरूर कर ही लेना चाहिये। जपमें उपांशु जप सर्वोत्तम है। इसके सिवा गृहस्थके लिये पंचमहायज्ञकी भी बड़ी आवश्यकता है। कम-से-कम बलिवैश्वदेव तो नित्यप्रति अवश्य ही करना चाहिये। बलिवैश्वदेवकी विधि अन्यत्र प्रकाशित है।

४. ***तप***—स्वधर्मके पालनमें बड़े-से-बड़ा कष्ट सहना तप कहलाता है। गीता अध्याय १७ श्लोक १४ से १९ तक शारीरिक, मानसिक, वाचिक तीन प्रकारके तपका वर्णन है, उसके अनुसार सात्त्विक तप करना चाहिये।

५. ***दया***—स्मृतिकार कहते हैं—

परे वा बन्धुवर्गे वा मित्रे द्वेष्टरि वा सदा।
आपन्ने रक्षितव्यं तु दयैषा परिकीर्तिता॥

(अत्रिस्मृ० ४१)

'घरका हो या बाहरका, मित्र हो या वैरी, किसीको भी दुःखमें

देखकर सदैव ही उसको बचानेकी चेष्टा करनी दया कहलाती है।' दयालु पुरुषका हृदय दूसरेके दुःखको देखकर तत्काल द्रवित हो जाता है। कहा है—

दया धर्मका मूल है पाप-मूल अभिमान।
तुलसी दया न छाँड़िये जबलगि घटमें प्रान॥

६. *दान*—दान देना मनुष्यमात्रका धर्म है। धन, विद्या, बुद्धि, अन्न, जल, वस्त्र, सत्परामर्श, जिसके पास जो कुछ हो, योग्य देश, काल, पात्र देखकर उसका दान करना चाहिये, परन्तु दान सात्त्विकभावसे होना चाहिये। जो दान देश, काल, पात्र न देखकर बिना सत्कार या तिरस्कारपूर्वक दिया जाता है वह तामस है। जो मनमें कष्ट पाकर, बदला लेनेकी इच्छासे या मान-बड़ाई-प्रतिष्ठा, पुत्र-प्राप्ति, रोग-निवृत्ति या स्वर्ग-सुखादिकी प्राप्तिके लिये दिया जाता है वह राजस है और जो कर्तव्य समझकर प्रत्युपकारकी कोई भी भावना न रखकर उचित देश, काल, पात्रमें दिया जाता है वह सात्त्विक दान है। सात्त्विक दान भगवत्प्राप्तिमें बहुत सहायक होता है। जिस देश और कालमें जिस वस्तुका जिन प्राणियोंके अभाव हो और अपने पास वह वस्तु हो तो उस देश, कालमें उस वस्तुके द्वारा उन प्राणियोंकी सेवा करना ही देश, काल देखकर दान देना है। भूखे, अनाथ, दुःखी, रोगी और असमर्थ तथा आर्त भिखारी आदि तो अन्न, वस्त्र, ओषधि या जिस वस्तुका जिसके पास अभाव हो, उस वस्तुद्वारा सेवा करनेके सदैव ही योग्य पात्र हैं, दानकी महत्ता रुपयोंकी संख्यापर नहीं है वह तो दाताकी नीयतपर निर्भर है। जिस दानमें जितना ही अधिक स्वार्थ-त्याग होगा, उतना ही उसका महत्त्व अधिक है। इसीलिये महाभारतके अश्वमेधपर्वमें पाण्डवोंके अपार दानकी निन्दाकर नकुलने उञ्छवृत्तिवाले गरीब ब्राह्मणके साधारण रोटीके दानको महत्त्वपूर्ण बतलाया था (महा०, अश्व० ८०। ७)। एक आदमी नामके लिये या अन्य किसी स्वार्थके वशमें होकर अपने करोड़ रुपयेमेंसे लाख रुपये दान करता

है और दूसरा एक गरीब निःस्वार्थभावसे कर्तव्य समझकर अपने पेटको खाली रखकर अपनी एक ही रोटीमेंसे आधी रोटी दे देता है, इन दोनोंमें आधी रोटीके दानका महत्त्व अधिक है। यों तो न देनेकी अपेक्षा सकामभावसे भी अच्छे कार्यमें दान देना उत्तम ही है।

पाँच उपाय

उपर्युक्त छः उपायोंको काममें न लाया जाय तो निम्नलिखित पाँचकी शरण ग्रहण करनी चाहिये। इन पाँचोंकी कृपासे परम सिद्धि मिल सकती है।

गायत्री गोविन्द, गौ, गीता, गंगास्नान।
इन पाँचोंकी कृपासे शीघ्र मिलें भगवान॥

१. ***गायत्री***—शास्त्रोंमें गायत्रीकी बड़ी ही महिमा गायी गयी है। गायत्रीका जप शुद्ध और मौन होकर प्रणव और व्याहृतिसहित करना चाहिये। गायत्री-मन्त्रमें सच्चिदानन्दघन विश्वव्यापी ब्रह्मकी स्तुति, उनके दिव्य तेजका ध्यान और प्रार्थना है।

भगवान् मनु गायत्रीकी महिमामें लिखते हैं—

ओंकारपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः।
त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेयं ब्रह्मणो मुखम्॥
एतदक्षरमेतां च जपन्व्याहृतिपूर्विकाम्।
सन्ध्ययोर्वेदविद्विप्रो वेदपुण्येन युज्यते॥
सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत् त्रिकं द्विजः।
महतोऽप्येनसो मासात्त्वचेवाहिर्विमुच्यते॥
योऽधीतेऽहन्यहन्येतां त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रितः।
स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमान्॥

(२। ८१, ७८—७९, ८२)

'ओंकारसहित तीन महाव्याहृति और तीन पदोंवाली गायत्रीको वेदका मुख समझना चाहिये। जो वेदज्ञ द्विज प्रातःकाल और सायंकाल

प्रणव (ॐ) और व्याहृति (भूः, भुवः, स्वः) सहित इस गायत्रीका जप करते हैं, उनको सम्पूर्ण वेदके अध्ययनका फल मिलता है। जो द्विज नगरके बाहर (एकान्त स्थानमें) स्थित हो, प्रतिदिन एक मासतक एक सहस्र गायत्रीका जप करता है, वह जैसे साँप केंचुलीसे छूट जाता है इसी प्रकार महान् पापसे छूट जाता है। जो पुरुष आलस्यको छोड़कर प्रतिदिन नियमपूर्वक तीन वर्षतक गायत्रीका जप करता है वह वायुकी तरह गतिवाला और आकाशकी भाँति निर्लेप होकर परब्रह्म परमात्माको प्राप्त होता है।' अतएव गायत्रीका जप प्रतिदिन अवश्य करना चाहिये।

२. ***गोविन्द***—भगवान् श्रीगोविन्दके अनन्य चिन्तनसे क्या नहीं होता? भगवान् स्वयं कहते हैं—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

(गीता ९।२२)

'जो अनन्यभावसे मेरेमें स्थित हुए भक्तजन मुझ परमेश्वरको निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्कामभावसे भजते हैं, उन नित्य एकीभावसे मुझमें स्थितिवाले पुरुषोंका योगक्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ।' अतएव दृढ़ निश्चय और श्रद्धा-प्रेमके साथ भगवान्का चिन्तन करना चाहिये।

३. ***गौ***—हिन्दू-शास्त्रोंमें गौकी बड़ी महिमा है। गौकी सेवासे सर्व अभीष्टोंकी सिद्धि होती है। गो-मूत्र, गोमय, दूध, दही और घृत—यह पंचगव्य पवित्र और पापनाशक है। आजकल गौ-जातिका भारतमें बड़ी ही निर्दयताके साथ ह्रास किया जा रहा है। प्रत्येक धर्मभीरु उन्नति चाहनेवाले पुरुषको तत्पर होकर यथाशक्ति गौ-जातिकी रक्षा और गौकी सेवा करनी चाहिये।

४. ***गीता***—गीता तो भगवान्का हृदय है '**गीता मे हृदयं पार्थ**'।

भगवान् व्यासदेवजी कहते हैं—

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता॥

(महा०, भीष्म० ४३।१)

'स्वयं कमलनाभ भगवान्‌के मुख-कमलसे निकली हुई गीताका ही भलीभाँति गान करना चाहिये, अन्य शास्त्रोंके विस्तारसे क्या प्रयोजन है?'

गीताकी महिमा कोई क्या कह सकता है? जो मन लगाकर गीताका अध्ययन करता है, उसीको अनुभव होता है। गीतामें बहुत-से ऐसे श्लोक हैं कि जिनमेंसे किसी आधे या चौथाई श्लोकके अनुसार भी आचरण किया जाय तो भगवत्-प्राप्ति सहज ही हो सकती है। कहा गया है—

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्॥

'सम्पूर्ण उपनिषद् गौ हैं, दुहनेवाले गोपालनन्दन श्रीकृष्ण हैं, श्रेष्ठबुद्धि अर्जुन इस महान् गीतामृतरूपी दुग्धको पान करनेवाला बछड़ा है।' अतएव प्रतिदिन मन लगाकर अर्थसहित गीताका पाठ और अध्ययन अवश्य करना चाहिये।

५. ***गंगास्नान***—श्रीगंगाजीकी अपार महिमा है। भक्तोंने गंगाजीका नाम ब्रह्मद्रव रखा है, यानी साक्षात् ब्रह्म ही पिघलकर निराकारसे नीराकार होकर बह चला है। गंगाके स्नान-पानसे पापोंका नाश और मुक्तिकी प्राप्ति शास्त्रोंमें जगह-जगह बतलायी गयी है। आज भी गंगातट-जैसा पवित्र स्थान और प्रायः नहीं मिलता। अच्छे-अच्छे साधु-महात्मा गंगा-तटपर ही निवास करते हैं। विदेशी डॉक्टरोंने परीक्षा करके बतलाया है कि गंगाजलमें रोगनाशक शक्ति है। किसी भी रोगके बीजाणु होवें, गंगामें पड़कर नष्ट हो जाते हैं। वर्षों रखे रहनेपर भी गंगाजलमें कीड़े नहीं पड़ते, यह तो विख्यात बात है। जो

कोई श्रद्धासे श्रीगंगाजीका सेवन, स्नान और जलपान करता है, वह परम गतिको पाता है, यह शास्त्रोंका सिद्धान्त है।

चार उपाय

उपर्युक्त पाँच उपाय न हों तो नीचे लिखे चार उपायोंको काममें लाना चाहिये।

संयम, सेवा, साधना, सत्पुरुषोंका संग।
ये चारों करते तुरत मोहनिशाको भंग॥

१. ***संयम***—मन, वाणी, शरीरको इच्छानुसार न चलने देकर और सांसारिक विषय-भोगोंसे रोककर कल्याणमय मार्गमें लगाना ही संयम कहलाता है। मनु महाराजने तो मन, वाणी, शरीरको संयममें रखनेवालेको ही त्रिदण्डी कहा है—

वाग्दण्डोऽथ मनोदण्डः कायदण्डस्तथैव च।
यस्यैते निहिता बुद्धौ त्रिदण्डीति स उच्यते॥
त्रिदण्डमेतन्निक्षिप्य सर्वभूतेषु मानवः।
कामक्रोधौ तु संयम्य ततः सिद्धिं नियच्छति॥

(१२।१०-११)

'वाग्दण्ड अर्थात् वाणीका संयम, मनोदण्ड अर्थात् मनका संयम और कायदण्ड अर्थात् शरीरका संयम, इन तीनोंको जो बुद्धिपूर्वक संयममें रखता है वही त्रिदण्डी है। जो मनुष्य समस्त प्राणियोंके प्रति मन, वाणी, शरीरको संयमित कर लेता है तथा उनको रोकनेके लिये काम, क्रोधका संयम करता है, वह मोक्षको प्राप्त करता है।'

जो पुरुष मन, इन्द्रिय और शरीरको वशमें रखकर राग-द्वेषके वशमें न होकर संसारमें विचरता है वही आनन्दको प्राप्त होता है। संयमी पुरुष ही नीरोग, बलवान्, धर्मात्मा, दीर्घायु और मोक्षके योग्य होते हैं।

२. ***सेवा***—गुरुजनोंकी और प्राणी-मात्रकी निष्कामभावसे भगवत्-बुद्धिसे सेवा करनेवाला पद-पदपर भगवान्‌की सेवा करता हुआ अन्तमें भगवान्‌को प्राप्त करता है।

३. *साधना*—भगवत्प्राप्तिके लिये भजन, ध्यान आदि जो कुछ भी किया जाय सभी साधना है। अपने-अपने अधिकार, विश्वास, प्रकृति और रुचिके अनुसार भगवान्‌को पानेके लिये नियमित साधन अवश्य करना चाहिये।

४. *सत्पुरुषोंका संग*—भागवतमें कहा है—

दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभंगुरः।
तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुण्ठप्रियदर्शनम्॥

(११।२।२९)

'प्राणियोंके लिये मनुष्यदेह अत्यन्त दुर्लभ और क्षणभंगुर है। इसमें भी भगवान्‌के प्रिय भक्तोंके दर्शन तो और भी दुर्लभ हैं, क्योंकि भक्त, सन्त-महात्मा एक प्रकारसे भगवान्‌के ही रूप हैं।' गोसाईंजी महाराज तो उन्हें रामसे भी बढ़कर बतलाते हैं—*'राम तें अधिक राम कर दासा'*। सन्तोंके संगसे पापोंका नाश होता है, अन्त:करणकी शुद्धि होती है, मन परमात्मामें लगता है और संशयोंका उच्छेद होकर भगवत्प्राप्ति होती है। अतएव सत्पुरुषोंके संगका आश्रय अवश्य लेना चाहिये।

राजा रहूगणके प्रति महात्मा जडभरत कहते हैं—

रहूगणैतत्तपसा न याति
न चेज्यया निर्वपणाद् गृहाद्वा।
नच्छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यै-
र्विना महत्पादरजोऽभिषेकम्॥

(श्रीमद्भा० ५।१२।१२)

'हे राजन्! परमज्ञान केवल महापुरुषोंका चरणरज मस्तकपर धारण करनेसे ही मिलता है। तपसे, वेदोंसे, दानसे, यज्ञसे, गृहस्थ-धर्मके पालनसे, जल, अग्नि या सूर्यकी उपासनारूप कर्मोंसे वह किसी प्रकार भी नहीं मिलता।' अतएव महापुरुषोंका सेवन ही मोक्षका द्वार है।

तीन उपाय

उपर्युक्त चार साधन न करे तो निम्नलिखित तीन साधन करने चाहिये—

सत्य वचन, आधीनता, पर-तिय मातु-समान।
इतने पै हरि ना मिले, तो तुलसीदास जमान॥

१. ***सत्य वचन***—कहा है—

साँच बरोबर तप नहीं झूठ बरोबर पाप।
जाके हिरदै साँच है ताके हिरदै आप॥

सत्य भगवान्‌का स्वरूप है, जहाँ सत्य है, वहीं भगवान् हैं। सत्यवादी होनेके कारण आजतक श्रीहरिश्चन्द्रका नाम चल रहा है। सत्यवादी होनेके कारण ही जो मुँहसे निकल जाता है, वही सत्य हो जाता है। स्वार्थ, आदत, हँसी-मजाक या भविष्यके वचनोंमें भी किसी प्रकार झूठ नहीं बोलना चाहिये।

२. ***आधीनता***—अपनेको भगवान्‌के अधीन (अनुकूल) बना देना, अपनी स्वतन्त्रता छोड़कर परमात्माका सेवक बनकर उनकी आज्ञा और संकेतके अनुसार जीवन बिताना ही आधीनता है। संसारमें भगवद्भावसे पुत्रको माता-पिताके, शिष्यको गुरुके, स्त्रीको पतिके और सेवकको स्वामीके अधीन रहकर कर्तव्यका पालन करना भी भगवान्‌के ही अधीन होना है।

भगवान्‌के अधीन होनेपर उसमें भगवान्‌के प्राय: सभी गुणोंका विकास हो जाता है। स्वामीके बलको पाकर सेवक महान् बलवान् हो जाता है। राजाके अधीन रहनेवाला मामूली सिपाही राजाके बलपर बड़े-बड़े धनियों और शक्तिशालियोंको बाँध लेता है, इसी प्रकार भगवान्‌के अधीन होकर मनुष्य भगवान्‌के बलसे बलीयान् हो सारे पापोंपर विजय प्राप्त करके भगवान्‌का परम प्रेमी बन सकता है।

३. ***पर-तिय मातु-समान***—स्त्रीमात्र जगत्-जननीका स्वरूप है, यह समझकर अपनी स्त्रीको छोड़कर अन्य सबके चरणोंमें हृदयसे

प्रणाम करना और सबके प्रति भक्ति-श्रद्धा रखना मनुष्यके लिये कल्याणप्रद है। जो पुरुष परस्त्रीमात्रमें मातृ-बुद्धि रखता है, उसके तेज और तपकी वृद्धि होती है और वह पापोंसे बचकर भगवान्को पा सकता है।

कहा जाता है कि यह दोहा श्रीतुलसीदासजी महाराजका है और वे इसमें इस बातका जिम्मा लेते हैं कि इन तीनों साधनोंका आश्रय लेनेवाले अवश्य ही तर जायँगे।

दो उपाय

उपर्युक्त तीन साधन न साधे जायँ तो नीचे लिखे दो ही साधनोंका अनुसरण करना चाहिये—

दो बातनको भूल मत जो चाहै कल्यान।
नारायण इक मौतको दूजे श्रीभगवान॥

१. मौतकी याद—संसारकी प्रत्येक वस्तु नाश होनेवाली है, जो उत्पन्न हुआ है उसका नाश अवश्यम्भावी है। हमारा शरीर और हमारे सम्बन्धी तथा समस्त विषय एक दिन कालके ग्रास बन जायँगे। फिर इनसे मोह क्यों? इस नाशवान् शरीरके लिये, जो प्रतिक्षण मृत्युकी ओर बढ़ रहा है, इतना प्रपंच किसलिये? मनुष्यको मौत याद नहीं रहती, इसीसे उसे विषयोंमें वैराग्य नहीं होता। महाराज युधिष्ठिरने यक्षसे कहा है—

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम्।
शेषाः स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्॥

(महा०, वन० ३१३।११६)

'रोज-रोज प्राणी मरकर यमलोकको जा रहे हैं, (हाथसे उनकी दाह-क्रिया करते हैं) परन्तु बचे हुए लोग सदा जीना ही चाहते हैं, इससे बढ़कर अचरज और क्या होगा?' इसलिये 'नारायण स्वामी' मौतको याद रखनेका उपदेश देते हैं, क्योंकि हर समय

मौतको याद रखनेसे नये पाप नहीं बन सकते, तथा विषयोंमें वैराग्य हो जाता है।

२. *भगवान्‌की याद*—वैराग्यके साथ ही अभ्यास भी होना चाहिये। भगवान्‌ने अभ्यास और वैराग्य दोनोंके सम्पादनसे ही मनका निरोध बतलाया है। मृत्युको नित्य याद रखनेसे वैराग्य तो हो जायगा, परन्तु उससे आनन्द नहीं मिलेगा। जगत् शून्य और विनाशी प्रतीत होगा। इसलिये उसीके साथ भगवान्‌का चिन्तन होना चाहिये। सारे संसारमें भगवान् ही व्याप्त हो रहे हैं और जो कुछ होता है, सब उन्हींकी लीला है। वही परमानन्द और परम चेतन तथा ज्ञानस्वरूप हैं। निरन्तर उनका स्मरण करनेसे सब पापोंके नाश और मनके भगवदाकार हो जानेपर अनायास ही मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है।

एक ही उपाय

ये दो उपाय भी न हों तो भगवान् श्रीकृष्णके मुखसे उपदिष्ट, सबका सार और महान् इस एक उपायका अवलम्बन तो सभीको करना चाहिये। यह एक ही उपाय ऐसा है जिसके उपयोग करनेसे आप ही सब कुछ सिद्ध हो जाता है। उपाय है—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८। ६६)

अर्थात्—

सब धर्मनको छोड़कर एक शरण मम होहि।
चिन्ता तजु, सब पापतें मुक्त करौंगो तोहि॥

'हे अर्जुन! तू सब धर्मोंको अर्थात् सम्पूर्ण कर्मोंके आश्रयको त्यागकर केवल एक मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेव परमात्माकी ही अनन्य शरणको प्राप्त हो, मैं तुझको सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर।' भगवान् श्रीराम कहते हैं—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम॥

(वा० रा० ६। १८। ३३)

'जो एक बार भी मेरे शरण होकर यह कह देता है कि मैं तेरा हूँ, उसको मैं सर्वभूतोंसे अभय कर देता हूँ, यह मेरा व्रत है।'

बस, भगवान्‌की सर्वतोभावेन शरणागति ही परम और सर्वोत्तम उपाय है। जो भगवान्‌के शरण हो गया वह भगवान्‌का हो गया, वह सदाके लिये निर्भय और निश्चिन्त हो गया।* अतएव सबका आश्रय छोड़कर हमारे एकमात्र परम प्रेमी सदा हित करनेवाले भगवान्‌की शरण ग्रहण करनी चाहिये।

---

* शरणागतिका विशेष तत्त्व जानना हो तो 'कल्याणप्राप्तिके उपाय' नामक पुस्तक पढ़िये।

कल्याणप्राप्तिकी कई युक्तियाँ

सभी कार्योंमें स्वार्थत्याग प्रधान है। किसी भी वैध कार्यमें स्वार्थका त्याग होनेसे नीच-से-नीच प्राणीका भी कल्याण हो जाता है।

उतने ही भोगोंका अनासक्तभावसे ग्रहण किया जाय जितने शरीर-निर्वाहके लिये आवश्यक हैं। तथा केवल आसक्तिका त्याग कर देनेसे भी कल्याण हो जाता है।

जो कुछ भी कार्य करे उसमें अहंकारका त्याग कर दे। किसी भी उत्तम कार्यमें अहंकारको पास न आने दे।

घरमें भगवान्‌की मूर्ति रखकर भक्तिभावसे उसकी पूजा, आरती, स्तुति एवं प्रार्थना करनेसे भी कल्याण हो जाता है।

प्रतिदिन नियमपूर्वक एकान्तमें बैठकर मनसे सम्पूर्ण संसारको भूल जावे। इस प्रकार संसारको भुला देनेसे केवल एक चैतन्य आत्मा शेष रह जायगा। तब उस चैतन्यस्वरूपका ध्यान करे। ध्यान करनेसे समाधि हो जाती है और मुक्ति हो जाती है।

यह नियम ले ले कि शरीरसे वही कार्य निष्कामभावके साथ किया जायगा कि जिससे दूसरेका उपकार हो। इसके समान कोई भी धर्म नहीं है। भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने कहा है—

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई । पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ॥

इस नियमको धारण कर लेनेसे भी संसारसे मुक्ति हो जाती है।

यदि इन्द्रियाँ और मन वशमें हों तो भगवान्‌का ध्यान ही सबसे बढ़कर कल्याणका साधन है। यदि मन, इन्द्रियाँ वशमें न हों तो ऐसी अवस्थामें बिना किसी कामनाके केवल आत्माके कल्याणके लिये व्रत एवं उपवास आदिका साधन करना चाहिये। परमात्माकी प्राप्तिके अतिरिक्त उनसे और कुछ भी कामना नहीं करनी चाहिये। इस प्रकार साधन करनेसे भगवान्‌की प्राप्ति होती है। सारांश यह है कि यदि मन

एवं इन्द्रियाँ वशमें हों तब तो ध्यानयोगका साधन करे। नहीं तो बिना किसी कामनाके केवल भगवान्‌की प्राप्तिके लिये ही तप एवं उपवास आदिका साधन करे। लेकिन इन सबसे भी सुगम उपाय तो भजन ही है।

उठते, बैठते, चलते हर समय नामहीका जप किया जाय। नामको कभी भी न भूले, यह भगवत्प्राप्तिका बहुत सुगम उपाय है। कहा भी है—

कलिजुग केवल नाम अधारा। सुमिरि सुमिरि भव उतरहु पारा॥
सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥
अपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ। भए मुकुत हरि नाम प्रभाऊ॥

एक ऐसा साधन भी है कि जिससे हर समय आनन्द रहता है और जिसमें परिश्रम भी नहीं करना पड़ता। वह है आनन्दमयका अभ्यास। '**आनन्दमयोऽभ्यासात्**।' (ब्र० सू० १।१।१२) 'आनन्द परमात्माका स्वरूप है।' चारों तरफ बाहर-भीतर आनन्द-ही-आनन्द भरा हुआ है, सारे संसारमें आनन्द छाया हुआ है। यदि ऐसा दिखलायी न दे तो वाणीसे केवल कहते रहो और मनसे मानते रहो। जलमें डूब जाने, गोता खा जानेके समान निरन्तर आनन्दहीमें डूबा रहे और गोता लगाता रहे। रात-दिन आनन्दमें मग्न रहे।

किसीकी मृत्यु हो जाय, घरमें आग लग जाय अथवा और भी कोई अनिष्ट कार्य हो जाय तो भी आनन्द-ही-आनन्द, कुछ भी हो केवल आनन्द-ही-आनन्द। इस प्रकारका अभ्यास करनेसे सम्पूर्ण दुःख एवं क्लेश नष्ट हो जाते हैं। वाणीसे उच्चारण करे तो केवल आनन्दहीका, मनसे मनन करे तो आनन्दहीका तथा बुद्धिसे विचार करे तो आनन्दहीका; परन्तु यदि ऐसी प्रतीति न हो तो कल्पितरूपसे ही आनन्दका अनुभव करे। इसका भी फल बहुत अच्छा होता है। ऐसा करते-करते आगे चलकर नित्य आनन्दकी प्राप्ति हो जाती है। इस साधनको सब कर सकते हैं। पुराने जमानेमें मुसलमानोंके राज्यमें

हिंदुओंसे कहा गया कि तुम मुसलमान मत बनो, हिंदू ही रहो एवं हिंदूधर्मका ही पालन करो, केवल मुसलमानोंमें अपना नाम लिखा दो। कोई पूछे तो कहो कि हम मुसलमान हैं। इसमें तुम्हारा क्या बिगड़ता है। उन्होंने यह बात स्वीकार कर ली। आगे चलकर उनकी सन्तानसे काजियोंने कहा कि तुम तो मुसलमान हो इसलिये मुसलमानोंके धर्मका पालन करो। अन्तमें यहाँतक हुआ कि वे लोग कट्टर मुसलमान बन गये। इसी प्रकार हमलोगोंको भी यह निश्चय कर लेना चाहिये कि हम सब एक आनन्द ही हैं। ऐसा निश्चय कर लेनेसे आनन्द-ही-आनन्द हो जायगा।

भगवान्‌की मूर्ति या चित्रको सामने रखकर तथा आँखें खोलकर उनके नेत्रोंसे अपने नेत्र मिलावे। त्राटककी भाँति आँख खोलकर उसमें ध्यान लगा दे। ध्यानके समय यह विश्वास रखे कि इसमें भगवान् प्रकट होंगे। विश्वासपूर्वक ऐसा ध्यान करनेपर इससे भी भगवान् मिल जाते हैं। यह भी भगवत्प्राप्तिका सुगम साधन है।

वृक्ष, पत्थर, मनुष्य, पशु, पक्षी इत्यादि संसारकी जो भी वस्तुएँ दिखलायी दें उन सबमें यह भाव करे कि भगवान्‌ने ही ये सब रूप धारण कर रखे हैं। मनसे कहे जहाँ तुम्हारी इच्छा हो वहीं जाओ, सब रूप तो भगवान्‌ने ही धारण कर रखे हैं। जो भी वस्तुएँ दिखलायी देती हैं वे सब परमात्मा नारायणके ही रूप हैं। सारे संसारमें सबको भगवान्‌का रूप समझकर मन-ही-मन भगवद्‌बुद्धिसे सबको प्रणाम करे। एक परमात्माने ही अनन्त रूप धारण कर लिये हैं, इस प्रकारके अभ्याससे भी कल्याण हो जाता है। इस प्रकार शास्त्रोंमें बहुत उपाय बतलाये गये हैं। जिसको जो सुगम मालूम पड़े उसको उसीका साधन करना चाहिये; क्योंकि उनमेंसे किसी भी एकका साधन करनेसे कल्याण हो सकता है।

वृत्तियाँ दो हैं—अनुकूल और प्रतिकूल। जो मनको अच्छी लगे वह अनुकूल एवं जो मनके विरुद्ध हो वह प्रतिकूल कही जाती है। कोई

भी काम जो मनके अनुकूल होता है उसमें स्वाभाविक ही प्रसन्नता होती है और जो मनके प्रतिकूल होता है उसमें दुःख होता है। उस दुःखको भगवान्‌का भेजा हुआ पुरस्कार समझकर उसमेंसे प्रतिकूलताको निकाल दे और यह विचार करे कि जो कुछ भी होता है भगवान्‌की इच्छासे होता है। भगवान्‌की इच्छाके बिना पेड़का एक पत्तातक नहीं हिल सकता।

हमलोग अनुकूलमें तो प्रसन्न होते हैं और प्रतिकूलमें द्वेष करते हैं। भला इस प्रकार कहीं भगवान् मिल सकते हैं? भगवान्‌की प्रसन्नतामें ही प्रसन्नताका निश्चय करना चाहिये। जो बात मनके अनुकूल होती है उसमें तो ऐसा निश्चय करनेमें कोई कठिनाई है ही नहीं, लेकिन जो मनके प्रतिकूल हो उसको अनुकूल बना लेना चाहिये। स्मरण रखना चाहिये कि भगवान्‌के प्रतिकूल तो वह है नहीं, उनके प्रतिकूल होता तो होता ही कैसे? इस साधनसे भी उद्धार हो सकता है।

वाणीसे सत्य बोले, व्यवहार सत्य करे, सत्यका आचरण करे। इससे कल्याण हो जाता है।

साँच बरोबर तप नहीं झूठ बरोबर पाप।
जाके हिरदै साँच है ताके हिरदै आप॥

सब संसारके जितने पदार्थ जिस रूपमें दिखलायी देते हैं वे सब सचमुच नाशवान् हैं। वे जैसे हैं हमारी आँखोंके सामने हैं। उन सब पदार्थोंमें समबुद्धि कर ले। उनमेंसे भेदभाव उठा दे। किसी भी वस्तुमें भेद न रखे। जैसे शरीरमें अपनापन है, भेद नहीं, अंगोंमें अन्तर नहीं; इसी तरह एक-दूसरेसे भेद न रखे। सबमें समता कर ले, भेदबुद्धि उठा दे। इस भेदबुद्धिके उठानेसे भी कल्याण हो जायगा।

गंगाजीके प्रवाहका, हवा, पशु, पक्षी आदिका जो भी शब्द सुनायी दे उसमें ऐसी भावना करे कि शब्द ही भगवान् हैं। किसी प्रकारका भी शब्द सुनायी क्यों न दे **'नादं ब्रह्म'** शब्दको ही ब्रह्म समझे। जो

कुछ भी सुनायी दे वह भगवान् है। चाहे कोई गाली दे, चाहे आशीर्वाद दे, दोनोंको ही भगवान् समझे। यदि गाली सुनकर हमें दुःख होता है तो फिर हमने शब्दको भगवान् कहाँ समझा? भगवान् समझनेपर तो आनन्द-ही-आनन्द होगा। भगवान्‌के दर्शनोंसे जो आनन्द हो, गाली सुननेसे भी उसी आनन्दका अनुभव करे, इस बातसे भी कल्याण हो जाता है।

संकल्पमात्र (स्फुरणामात्र)-को भगवान्‌का स्वरूप समझकर एकान्तमें आँखें मीचकर बैठ जावे। मन जहाँ जाता है और जो कुछ देखता है सब भगवान् है ऐसी भावना करे। यह निश्चय कर ले कि मेरा मन भगवान्‌के सिवा और किसी भी वस्तुका चिन्तन ही नहीं करता है। मन घट, पट आदि जिस किसी भी पदार्थका चिन्तन करे उसीको भगवान् समझ ले, उसमें भगवद्‌बुद्धि कर ले। यह विश्वास कर ले कि जो कुछ मन चिन्तन करता है वह भगवान् है। भगवान्‌का स्वरूप वही है जो मन चिन्तन करता है। चाहे वह स्त्री, पुत्र, धन आदिका ही चिन्तन करे; उनको स्त्री, पुत्र एवं धन न समझे, किन्तु भगवान् समझे। पत्थर तथा वृक्ष जिस किसीका भी चिन्तन करे सब भगवान् है। जैसा दीखे वैसा ही भगवान्‌का स्वरूप मान ले। यह भी कल्याण-प्राप्तिका सीधा रास्ता है। ऊपर जितनी बातें बतलायी गयी हैं, उनमेंसे एक-एकके पालनसे कल्याण हो सकता है। हाँ, यह बात जरूर है कि श्रद्धा और रुचिके तारतम्यके कारण किसी साधनमें समय अधिक लगता है और किसीमें कम। लेकिन कल्याण सभीसे होता है।

स्वप्नमें जो संसार दीखता है, आँखें खोलनेसे जागनेपर वह नहीं दीखता। इसी तरह यह विश्वास कर ले कि मैं स्वप्नमें हूँ, मुझे जो कुछ भी प्रतीत होता है वह सब स्वप्न है। जब स्वप्न समाप्त हो जायगा तब अपने-आप ही असली सत्य वस्तु दीखने लगेगी। यह विश्वास कर ले कि जो दीखती है वह सच्ची वस्तु नहीं है, यह स्वप्नवत् है। जो भासती है वह है नहीं। स्वप्न मिटनेवाला जरूर है। आँख खुलते

ही मिट जायगा। इसपर यदि यह कहा जाय कि आजतक आँख क्यों नहीं खुली? तो इसका उत्तर यह है कि आजतक संसारके स्वप्नवत् होनेका निश्चय ही कब किया था? आत्माका संकल्प सत्य है। इसलिये यह निश्चय करो कि यह संसार स्वप्न है। चाहे वह सत्य ही क्यों न दिखायी दे, उसे स्वप्नवत् मानते रहो। मानते-मानते एक दिन स्वप्नका नाश हो जायगा और सत्य वस्तु प्राप्त हो जायगी।

सबको प्राण ही सबसे बढ़कर प्यारे हैं। प्राणके समान प्यारा कुछ भी नहीं है, प्रिय-से-प्रिय वस्तु तो याद रहेगी ही। इसलिये प्राणोंमें ब्रह्मकी भावना करे। आने-जानेवाले श्वासकी तरफ लक्ष्य रखे। श्वास तो अन्ततक आता ही है। यदि इस तरह अभ्यास किया जायगा तो अन्त समयमें उद्धार हो जायगा। प्राणको ब्रह्म मान ले! उसमें होनेवाले शब्दको ब्रह्मका नाम मान ले; क्योंकि प्राणोंसे **'सोऽहं सोऽहम्'** शब्दका उच्चारण होता रहता है। यह भी परमात्माका नाम है। इसलिये प्राण ही ब्रह्म है ऐसा निश्चय करनेसे परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। अब जिसको जो उपाय सुगम एवं प्यारा मालूम हो वह उसीका साधन करे।

इस प्रकार कल्याणकी प्राप्तिके और भी सैकड़ों उपाय हैं, परन्तु कुछ-न-कुछ तो करना ही होगा। साधन किये बिना कल्याण नहीं हो सकता। वे सब साधन गीता, वेद तथा श्रुतिमें बतलाये गये हैं। श्रेयार्थियोंको इनमेंसे कोई-सा भी एक साधन, जो उन्हें पसंद हो, करना चाहिये।

परमानन्दकी प्राप्तिके लिये साधनकी आवश्यकता

संसारमें सभी लोग सुखकी खोजमें हैं, सभी परमानन्द पाना चाहते हैं। रात-दिन सुख ही प्राप्त करनेकी चेष्टामें लगे हुए हैं, परन्तु सुख तो दूर रहा, असली सुखकी तो छाया भी नहीं मिलती! इसमें क्या कारण है? इतना प्रयत्न करनेपर भी सुख क्यों नहीं मिलता?

इस प्रश्नपर विचार करनेसे यह मालूम होता है कि हमारे सुखकी प्राप्तिमें तीन बड़े बाधक शत्रु हैं। उन्हींके कारण हम सुखके समीप नहीं पहुँच पाते। वे हैं मल, विक्षेप और आवरण।

मल है मनकी मलिनता, विक्षेप है चंचलता और आवरण है अज्ञानका पर्दा। जबतक इन तीनोंका नाश नहीं होता तबतक यथार्थ सुखकी प्राप्ति असम्भव है। इनमें आवरणका नाश तो सहज ही हो सकता है। आवरणको हटानेके लिये खास प्रयत्न करनेकी आवश्यकता नहीं है। भगवान् स्वयं बुद्धियोग प्रदान करके सारा मोह हर लेते हैं। भगवान् कहते हैं—

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

(गीता १०। ९-१०)

'निरन्तर मुझमें मन लगानेवाले और मुझमें ही प्राणोंको अर्पण करनेवाले भक्तजन मेरी भक्तिकी चर्चाके द्वारा आपसमें मेरे प्रभावको जनाते हुए तथा गुण और प्रभावसहित मेरा कथन करते हुए ही निरन्तर संतुष्ट होते हैं और मुझ वासुदेवमें ही निरन्तर रमण करते

हैं, उन निरन्तर मेरे ध्यान आदिमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तोंको मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं।'

जबतक मन मलिन और चंचल है तबतक प्रेमपूर्वक भजन ही नहीं होता, फिर बुद्धियोग कहाँसे मिले। पापके कारण मनमें जो अनेकों प्रकारके मलिन विचार उठा करते हैं, एकान्तमें ध्यानके लिये बैठनेपर जो बुरे-बुरे भाव मनमें उत्पन्न होते हैं, यही मनकी मलिनता है। राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, अभिमान, कपट, ईर्ष्या आदि दुर्गुण और दुर्भाव मलके ही कारण होते हैं। जिस व्यक्तिमें ये दोष जितने अधिक हैं, उसका चित्त उतना ही मलसे आच्छन्न है।

मल-दोषके नाशके लिये कई उपाय बतलाये गये हैं। इनमेंसे प्रधान दो हैं—भगवान्‌के नामका जप और निष्काम कर्म। भगवान्‌का नाम पापके नाशमें जादूका-सा काम करता है। नाममें पापनाशकी अपरिमेय शक्ति है, परन्तु नाममें प्रीति, श्रद्धा और विश्वास होना चाहिये। जैसे लोभी व्यापारीका एकमात्र ध्येय रुपया पैदा करना और इकट्ठा करना होता है और वह जैसे निरन्तर उसी ध्येयको ध्यानमें रखकर सब काम करता है, ठीक इसी प्रकार भगवत्प्रेमका लक्ष्य बनाकर हमें रामनामरूपी सच्चा धन एकत्र करना चाहिये—

कबिरा सब जग निरधना, धनवंता नहिं कोय।
धनवंता सो जानिये, जाके रामनाम धन होय॥

इसी प्रकार निष्काम कर्मयोगसे भी मलका नाश होता है। निष्काम कर्मयोगके प्रधान दो भेद हैं—भक्तिप्रधान कर्मयोग और कर्मप्रधान कर्मयोग। पहलेमें भक्ति मुख्य होती है और दूसरेमें कर्मकी मुख्यता होती है। इन दोनोंमें भक्तिप्रधान कर्मयोग विशेषरूपसे श्रेष्ठ है। वास्तवमें दोनोंमें ही भगवत्-प्रीति ही लक्ष्य है। अन्य कोई भी स्वार्थ नहीं है। स्वार्थका अभाव हुए बिना कर्मयोग बनता ही नहीं।

फलासक्तिको त्यागकर भगवत्प्रेमके लिये जो शास्त्रोक्त कर्म किये जाते हैं, उन्हींको निष्काम कर्मयोग समझना चाहिये। इस निष्काम कर्मयोगसे हमारे मनके मलरूप दुर्गुणों और दुराचारोंका नाश होकर सद्गुण, सदाचार, शान्ति और सुखकी प्राप्ति होती है। सात्त्विक भावों और गुणोंका परम विकास होता है। इस प्रकार मलदोषका नाश होनेपर विक्षेप अपने-आप ही मिट जाता है और चित्त परम निर्मल और शान्त होकर भगवान्‌की भक्तिमें लग जाता है। तदनन्तर भगवत्कृपासे आवरणका भंग हो जाता है। आवरणका नाश होते ही परमानन्दकी प्राप्ति होती है और मानव-जीवन सफल हो जाता है। मुक्ति अथवा भगवत्-साक्षात्कार करनेके लिये निष्कामभावसे की हुई भगवान्‌की भक्तिसे बढ़कर अन्य कोई साधन नहीं है। हमारा लक्ष्य यही रहे कि भगवान्‌में हमारा अनन्य प्रेम हो। इसीके लिये तत्परतासे चेष्टा हो, सफलता चाहनेवाले सभी लोग अपना लक्ष्य बनाकर चलते हैं, सब अपने जीवनका एक ध्येय रखते हैं और अपनी बुद्धिके अनुसार उसी ध्येयको परम श्रेष्ठ, सर्वोत्तम मानते हैं। ध्येयमें सर्वश्रेष्ठ बुद्धि न होगी तो उस ओर बढ़ना कठिन ही नहीं, असम्भव है। संसारमें सबसे बढ़कर हमारा लक्ष्य हो, उस लक्ष्यसे विचलित करनेवाला राग-द्वेषसे उत्पन्न हुआ मोह है; क्योंकि मोहके वश होकर हम अपने यथार्थ लक्ष्यको नहीं देख पाते—

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत।
सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परन्तप॥

(गीता ७। २७)

'हे भारत! संसारमें इच्छा और द्वेषसे उत्पन्न सुख-दुःखादि द्वन्द्वरूप मोहसे सम्पूर्ण प्राणी अत्यन्त अज्ञानताको प्राप्त हो रहे हैं।' यह प्रायः सभी प्राणियोंकी दशा है।

बहुत-से भाई यह कहते हैं कि इतने दिनोंसे साधन कर रहे हैं पर अभीतक भगवत्प्राप्ति नहीं हुई। इसका एकमात्र कारण यही

है कि मन-बुद्धि पवित्र और स्थिर नहीं हैं। साधनकी सफलता मन और बुद्धिकी पवित्रता और स्थिरतापर ही निर्भर है। मन और बुद्धि पवित्र और स्थिर नहीं हैं तो फिर साधनका फल प्रत्यक्ष होगा ही कैसे? निष्ठापूर्वक साधनसे ही मन और बुद्धिमें निर्मलता तथा स्थिरता आती है। मन और इन्द्रियाँ शुद्ध और स्थिर होकर भगवान्‌में प्रवेश कर जायँ इसके लिये पहले आवश्यकता इस बातकी है कि मन और इन्द्रियोंको अपने वशमें किया जाय। जबतक ये काबूमें नहीं आते तबतक भगवान्‌के स्वरूपमें स्थिर होकर भगवान्‌की प्राप्ति हो नहीं सकती।

महर्षि पतंजलिने मनको वशमें करनेका उपाय बतलाया है—अभ्यास और वैराग्य। इससे चित्त वशमें होता है, वृत्तियाँ एकाग्र होती हैं और चित्तका 'निरोध' होता है। यही भाव भगवान्‌ने गीतामें व्यक्त किया है—

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥

(६।३५)

'अभ्यास और वैराग्यसे मन वशमें होता है।' जिसका चित्त संयत है वही प्रयत्न करनेपर भगवान्‌की प्राप्ति कर सकता है। व्यभिचारिणी वृत्तियोंसे भगवान्‌को पकड़ना कठिन ही नहीं, प्रत्युत असम्भव-सा है।

जबतक चित्तमें विषयासक्ति है, तबतक चित्तका वशमें होना कठिन है। विषयासक्तिके नाशके लिये वैराग्य ही प्रधान उपाय है। विचार करना चाहिये कि संसारके विषय सभी दुःखरूप हैं। भगवान्‌ने संसारके भोगोंको दुःखमूलक और क्षणिक बतलाकर यह कहा है कि बुधजन इनमें नहीं रमते—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

(गीता ५।२२)

'जो ये इन्द्रिय तथा विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले सब भोग हैं, वे यद्यपि विषयी पुरुषोंको सुखरूप भासते हैं तो भी दुःखके ही हेतु हैं और आदि-अन्तवाले अर्थात् अनित्य हैं। इसलिये हे अर्जुन! बुद्धिमान् विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमता।'

अतएव बुद्धिमान् मनुष्योंको विचार करना चाहिये कि जब मूर्ख ही इन विषयोंमें रमते हैं तब हम समझदार कहलाते हुए मूर्ख क्यों बनें? विषयोंमें जो रमता है वह मूर्ख इसलिये है कि उसका समय और धन व्यर्थ जाता है, जीवन पापमय होता है और पापके कारण उसे दुःख उठाना पड़ता है।

जो मनुष्य अपने-आप दुःखका कारण बनता है वही मूर्ख है। इसलिये चित्तकी वृत्तियोंको विषयोंसे बराबर हटाते रहना चाहिये। संसारके जितने भोग हैं, उनमें दुःख और दोषका दर्शन करे। यद्यपि मोह और आसक्तिके कारण विषय अमृतके समान सुखकारी लगते हैं, परन्तु परिणाममें विषके समान घातक हैं, प्राण हर लेनेवाले हैं, लोक-परलोक बिगाड़नेवाले हैं। विषयोंका भोक्ता संसारमें बार-बार जन्मता-मरता है और नाना प्रकारके दुःखोंमें घुलता रहता है। विषयोंका भोग विष-भक्षणसे भी अधिक बुरा है। विचारके द्वारा विषयोंमें जो केवल दुःख-ही-दुःख देखता है वही बुद्धिमान् है। दोष-दर्शनका अभिप्राय यही है कि सारे विषय अत्यन्त अपवित्र हैं, घृणा करनेलायक हैं और उनमें रमना पाप है। साथ ही यह भी विचार करना चाहिये कि यदि ये विषय कदाचित् स्थायी होते तो सदा सुख देनेवाले समझे जा सकते, परन्तु ये क्षणभंगुर हैं; पल-पलमें इनका रूप बदलता रहता है। इसके सिवा इनमें सुख भी क्षणिक ही होता है (यद्यपि वह भी भ्रमसे ही होता है)। क्षणभरके लिये सुख देकर महान् दुःखके सागरमें डुबा जाते हैं। वे यदि वस्तुतः सुखरूप होते तो सदा ही सुखरूप ही होते। अतएव विषय अनित्य हैं, अस्थायी हैं, असुख हैं, विषरूप हैं, नरकमें गिरानेवाले

हैं। विषयोंके प्रति जो हमारी रागदृष्टि है और वैराग्यके प्रति जो हमारी विरक्ति है, इसीके कारण सारी व्यवस्था उलटी हो गयी है और विषयोंमें हमें सुख भासता है तथा वैराग्यमें दुःख।

असलमें तो नित्य न होनेके कारण विषय सर्वथा असत् हैं। विषयोंकी यह अनित्यता और उनका असत्पन प्रत्यक्ष देखते हुए और अनुभव करते हुए भी हम उनके उपभोगके लिये प्रवृत्त होते हैं, यही हमारी मूर्खता है। इस मूर्खताको विचारसे हटाना चाहिये। विचारसे विवेक उत्पन्न होगा और फिर विवेकसे ही वैराग्यका शुभोदय होगा। इस दृढ़ वैराग्यशस्त्रसे विषयरूप संसारवृक्षको काटना गन्नेको काटनेके समान सुगम हो जाता है। विषयोंकी ओर वृत्तियोंका कदापि न जाना, उनसे परम उपरामता हो जाना, उनका चिन्तन न होना ही इनका काटना है। सारे अनर्थोंकी उत्पत्ति इन्हींके चिन्तनसे होती है। भगवान्‌ने कहा है—

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

(गीता २। ६२-६३)

'विषयोंका चिन्तन करनेवाले पुरुषकी उन विषयोंमें आसक्ति हो जाती है, आसक्तिसे उन विषयोंकी कामना उत्पन्न होती है और कामनामें विघ्न पड़नेसे क्रोध उत्पन्न होता है तथा क्रोधसे अत्यन्त मूढ़भाव उत्पन्न हो जाता है, मूढ़भावसे स्मृतिमें भ्रम हो जाता है और स्मृतिमें भ्रम हो जानेसे बुद्धि अर्थात् ज्ञानशक्तिका नाश हो जाता है और बुद्धिका नाश हो जानेसे यह पुरुष अपनी स्थितिसे गिर जाता है।'

सत्ता और आसक्तिको लेकर विषयोंका चिन्तन करना ही गिरनेका कारण है। नाशवान्, क्षणभंगुर और अनित्य समझकर इनको दुःखका कारण समझें तो ये हमें स्पर्श भी नहीं कर सकते।

भगवान्‌ने गीतामें बतलाया है—जिसके सारे कर्म और सारे पदार्थोंमें आसक्ति नहीं है वही सर्वसंकल्पोंका संन्यासी है—

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते।
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते॥

(गीता ६।४)

'जिस कालमें न तो इन्द्रियोंके भोगोंमें और न कर्मोंमें ही आसक्त होता है, उस कालमें सर्वसंकल्पोंका त्यागी पुरुष योगारूढ़ कहा जाता है।'

जिसका मन पदार्थों और कर्मोंमें आसक्त नहीं होता वही योगी है। क्रिया करता है पर आसक्त नहीं होता। स्फुरणा हो पर आसक्ति नहीं, ऐसा सर्वसंकल्पोंका त्यागी ही योगारूढ़ है। इससे यही सिद्ध हुआ कि पदार्थोंको क्षणभंगुर, नाशवान् समझ लेनेपर उनका स्मरण होना स्फुरणामात्र है, अतएव यह अनर्थकारी नहीं है। सत्ता होनेपर ही आसक्ति होती है, असत् अर्थात् अभावमें आसक्ति नहीं होती। इससे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि ये चराचर जीव भी असत् हैं, वे असत् नहीं हैं। कार्यरूप हमारा यह शरीर असत् है, क्षणभंगुर है, नाशवान् है, आदि और अन्तवाला है। जो असत् है उसका भाव नहीं होता, जो सत् है उसका कभी अभाव नहीं होता। भगवान्‌ने कहा है—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।

(गीता २।१६)

तथा—

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत॥*

(गीता २।१८)

* इस नाशरहित, अप्रमेय, नित्यस्वरूप जीवात्माके ये सब शरीर नाशवान् कहे गये हैं। इसलिये हे भरतवंशी अर्जुन! तू युद्ध कर।

देह नाशवान् है पर देही (आत्मा) अविनाशी है। देह असत् है, देही सत् है। देहके सभी पदार्थ अनित्य और क्षणभंगुर हैं। संसारमें जो कुछ भी सत्ता-स्फूर्ति हम देख रहे हैं वह सब परमात्माकी ही है। वह विज्ञानानन्दघन परमात्मा नित्य है, शाश्वत है, सनातन है, अव्यय है। उसी एकसे सब सत्ता, सब स्फूर्ति है। सारी चेतना और स्फुरणा उसीकी है। वही नित्य-सत्यस्वरूप है। संसारकी सत्ताके मूलमें परमात्माका निवास है। यह सारी दमकती हुई चेतनता परमात्माकी स्फूर्ति है। यह सब परमात्माका स्वरूप है। सबके नाश होनेपर भी उसका नाश नहीं होता; वह सर्वदा, सर्वत्र प्रत्यक्ष विद्यमान है। ऐसे उस परमेश्वरकी शरण ग्रहण करके आनन्दके समुद्रमें गोते लगाना चाहिये। इसके लिये प्रभुने कई उपाय बतलाये हैं—

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे॥
अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः॥

(गीता १३। २४-२५)

'उस परमात्माको कितने ही मनुष्य तो शुद्ध हुई सूक्ष्मबुद्धिसे ध्यानके द्वारा हृदयमें देखते हैं; अन्य कितने ही ज्ञानयोगके द्वारा और दूसरे कितने ही कर्मयोगके द्वारा देखते हैं अर्थात् प्राप्त करते हैं। परन्तु इनसे दूसरे अर्थात् जो मन्दबुद्धिवाले पुरुष हैं, वे स्वयं इस प्रकार न जानते हुए दूसरोंसे अर्थात् तत्त्वके जाननेवाले पुरुषोंसे सुनकर ही तदनुसार उपासना करते हैं और वे श्रवणपरायण पुरुष भी मृत्युरूप संसार-सागरको निःसन्देह तर जाते हैं।'

महात्माजन क्या उपाय बतलाते हैं? वे किसी एकके अंगमात्रको बतला दें—उस एक अंगमात्रके साधनसे भी उस साधकका कल्याण हो जाता है।

छान्दोग्योपनिषद्में उद्दालकने सत्यकामको गौओंकी सेवा ब्रह्मज्ञानके

लिये बतलायी। केवल गौओंकी सेवामात्रसे सत्यकामको भगवान्‌की प्राप्ति हो गयी। महात्माके द्वारा बतलाये जानेके कारण गौकी सेवा ही परम साधन हो गया । महर्षि पतंजलिके बतलाये हुए अष्टांगयोगमेंसे भी किसी एक अंग अथवा किसी उपांगमात्रसे भी ब्रह्मकी प्राप्ति हो सकती है। केवल ध्यानसे या प्राणायामसे भी भगवान्‌की प्राप्ति हो सकती है। नियमके एक अंग स्वाध्याय अथवा ईश्वरप्रणिधानसे भी परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है।

ईश्वरप्रणिधानाद्वा । (योग० १।२३)

अतएव इससे यही प्रमाणित हुआ कि एक अंग अथवा एक उपांगसे भी भगवत्प्राप्ति हो सकती है। हृदयको पवित्र, मन-बुद्धिको स्थिर करनेके लिये शास्त्रोंमें बतलाये हुए विभिन्न मार्गोंमेंसे किसी भी मार्गको निश्चित कर प्राणपणसे प्रयत्न करना चाहिये। भगवत्कृपासे विजय निश्चित है, सफलता मिलेगी ही।

बारहवें अध्यायमें भगवान्‌ने यह बतलाया है कि जो मेरे परायण हुए भक्तजन सम्पूर्ण कर्मोंको मुझमें अर्पण करके मुझ सगुणरूप परमेश्वरको ही तैलधाराके सदृश अनन्य ध्यानयोगसे निरन्तर चिन्तन करते हुए भजते हैं, उन मुझमें चित्त लगानेवाले प्रेमी भक्तोंका मैं शीघ्र ही मृत्युरूपी संसार-सागरसे उद्धार कर देता हूँ। इसके अनन्तर भगवान्‌ने अर्जुनको उपदेश दिया कि तू मुझमें मन लगा, मुझमें ही बुद्धिको लगा, इसके अनन्तर तू मुझमें ही निवास करेगा अर्थात् मुझको ही प्राप्त होगा इसमें कुछ भी संशय नहीं है। फिर यदि तू मनको अचलरूपसे मुझमें नहीं लगा सकता तो अभ्यासके द्वारा मुझको प्राप्त होनेके लिये इच्छा कर। यदि तू इस अभ्यासको करनेमें भी असमर्थ है तो केवल मेरे लिये कर्म करनेके ही परायण हो। इस प्रकार मेरे अर्थ कर्मोंको करता हुआ मुझे ही प्राप्त होगा। यदि इसको भी करनेमें तू अपनेको असमर्थ पाता है तो सब कर्मोंके फलका त्याग कर। ऐसे त्यागसे तत्काल ही परमशान्ति होती है।

ऊपरके अवतरणमें भगवान्‌ने साधनाके विभिन्न मार्ग सुझाये हैं। जिसको जो रुचे, जिसकी जैसी योग्यता हो वह उसीको कर सकता है। इसी प्रकार चौथे अध्यायमें भी भगवान्‌ने यज्ञके नामसे साधनकी कई युक्तियाँ और मार्ग बतलाये हैं—

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना॥

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति॥

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति॥

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते॥

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः॥

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः॥

अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः॥

(गीता ४। २४—३०)

‘जिस यज्ञमें अर्पण अर्थात् स्रुवा आदि भी ब्रह्म है और हवन किये जानेयोग्य द्रव्य भी ब्रह्म है तथा ब्रह्मरूप कर्ताके द्वारा ब्रह्मरूप अग्निमें आहुति देनारूप क्रिया भी ब्रह्म है—उस ब्रह्मकर्ममें स्थित रहनेवाले पुरुषद्वारा प्राप्त किये जानेयोग्य फल भी ब्रह्म ही है। दूसरे योगीजन देवताओंके पूजनरूप यज्ञका ही भलीभाँति अनुष्ठान किया करते हैं और अन्य योगीजन परब्रह्म परमात्मारूप अग्निमें अभेददर्शनरूप

यज्ञके द्वारा ही आत्मरूप यज्ञका हवन किया करते हैं। अन्य योगीजन श्रोत्र आदि समस्त इन्द्रियोंको संयमरूप अग्नियोंमें हवन किया करते हैं और दूसरे योगीलोग शब्दादि समस्त विषयोंको इन्द्रियरूप अग्नियोंमें हवन किया करते हैं। दूसरे योगीजन इन्द्रियोंकी सम्पूर्ण क्रियाओंको और प्राणोंकी समस्त क्रियाओंको ज्ञानसे प्रकाशित आत्मसंयमयोगरूप अग्निमें हवन किया करते हैं। कई पुरुष द्रव्यसम्बन्धी यज्ञ करनेवाले हैं, कितने ही तपस्यारूप यज्ञ करनेवाले हैं तथा दूसरे कितने ही योगरूप यज्ञ करनेवाले हैं और कितने ही अहिंसादि तीक्ष्ण व्रतोंसे युक्त यत्नशील पुरुष स्वाध्यायरूप ज्ञानयज्ञ करनेवाले हैं। दूसरे कितने ही योगीजन अपानवायुमें प्राणवायुको हवन करते हैं, वैसे ही अन्य योगीजन प्राणवायुमें अपानवायुको हवन करते हैं तथा अन्य कितने ही नियमित आहार करनेवाले—प्राणायामपरायण पुरुष प्राण और अपानकी गतिको रोककर प्राणोंको प्राणोंमें ही हवन किया करते हैं। ये सभी साधक यज्ञोंद्वारा पापोंका नाश कर देनेवाले और यज्ञोंको जाननेवाले हैं।'

ऊपरके श्लोकोंमें भगवान्‌ने साधनाके भिन्न-भिन्न मार्ग तथा कल्याणके अनेक उपाय बतलाये हैं। इनमेंसे किसी एकको भी चरितार्थ करनेवाला व्यक्ति परमात्माको प्राप्त कर सकता है। यहाँ 'यज्ञ' शब्द साधनका वाचक है जिसके द्वारा सनातन ब्रह्मको प्राप्त होते हैं। कर्मनिष्ठा और ज्ञाननिष्ठा—इन्हीं दोके भेद विस्तारसे बतलाये गये हैं। इनके अनेक अंग-उपांग हैं। उनमेंसे एक किसी भी मार्गका साधन महात्मा पुरुष बतला दें तो हम संसार-सागरसे तर जायँ और हमें भगवान्‌की प्राप्ति हो जाय। कर्मयोग और सांख्ययोगके साधनोंसे जो अध्यात्मपथमें प्रवेश करते हैं उनकी सफलता तो निश्चित है ही। पर संत महापुरुषोंके बतलाये हुए किसी भी एक मार्गका जो अनुसरण करते हैं वे भी परमपदको प्राप्त हो जाते हैं।

ऊपर बताये हुए साधनोंमेंसे किसी एक साधनका अवलम्बन करनेसे मल, विक्षेप और आवरणका सर्वथा नाश हो जाता है अर्थात् उसके सारे दुर्गुण, दुराचार, दुःख और विघ्नोंका एवं मोहका अत्यन्त अभाव हो जाता है और मन, बुद्धि स्थिर होकर भगवत्कृपासे भगवत्तत्त्वको जानकर साधक परम शान्ति और परम आनन्दको प्राप्त हो जाता है।

॥ श्रीहरि: ॥

परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके शीघ्र कल्याणकारी प्रकाशन

कोड	पुस्तक
683	तत्त्वचिन्तामणि
814	साधन-कल्पतरु (तेरह महत्त्वपूर्ण पुस्तकोंका संग्रह)
1597	चिन्ता-शोक कैसे मिटें ?
1631	भगवान् कैसे मिलें ?
1653	मनुष्य-जीवनका उद्देश्य
1681	भगवत्प्राप्ति कठिन नहीं
1666	कल्याण कैसे हो ?
527	प्रेमयोगका तत्त्व
242	महत्त्वपूर्ण शिक्षा
528	ज्ञानयोगका तत्त्व
266	कर्मयोगका तत्त्व (भाग-१)
267	कर्मयोगका तत्त्व (भाग-२)
303	प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय
298	भगवान्के स्वभावका रहस्य
243	परम साधन—भाग-१
244	,, ,, भाग-२
245	आत्मोद्धारके साधन-भाग-१
335	अनन्यभक्तिसे भगवत्प्राप्ति
579	अमूल्य समयका सदुपयोग
246	मनुष्यका परम कर्तव्य (भाग-१)
247	,, ,, (भाग-२)
611	इसी जन्ममें परमात्मप्राप्ति
588	अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति
1296	कर्णवासका सत्संग
1015	भगवत्प्राप्तिमें भावकी प्रधानता

कोड	पुस्तक
248	कल्याणप्राप्तिके उपाय
249	शीघ्र कल्याणके सोपान
250	ईश्वर और संसार
519	अमूल्य शिक्षा
253	धर्मसे लाभ अधर्मसे हानि
251	अमूल्य वचन तत्त्वचिन्तामणि
252	भगवद्दर्शनकी उत्कण्ठा
254	व्यवहारमें परमार्थकी कला
255	श्रद्धा-विश्वास और प्रेम
258	तत्त्वचिन्तामणि
257	परमानन्दकी खेती
260	समता अमृत और विषमता विष
259	भक्ति-भक्त-भगवान्
256	आत्मोद्धारके सरल उपाय
261	भगवान्के रहनेके पाँच स्थान
262	रामायणके कुछ आदर्श पात्र
263	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र
264	मनुष्य-जीवनकी सफलता—भाग-१
265	मनुष्य-जीवनकी सफलता—भाग-२
268	परमशान्तिका मार्ग—भाग-१
269	परमशान्तिका मार्ग—भाग-२
543	परमार्थ-सूत्र-संग्रह
1530	आनन्द कैसे मिले ?
769	साधन नवनीत

कोड	पुस्तक
599	हमारा आश्चर्य
681	रहस्यमय प्रवचन
1021	आध्यात्मिक प्रवचन
1324	अमृत वचन
1409	भगवत्प्रेम-प्राप्तिके उपाय
1433	साधना पथ
1483	भगवत्पथ-दर्शन
1493	नेत्रोंमें भगवान्‌को बसा लें
1435	आत्मकल्याणके विविध उपाय
1529	सम्पूर्ण दुःखोंका अभाव कैसे हो ?
1561	दुःखोंका नाश कैसे हो ?
1587	जीवन-सुधारकी बातें
1022	निष्काम श्रद्धा और प्रेम
292	नवधा भक्ति
274	महत्त्वपूर्ण चेतावनी
273	नल-दमयन्ती
277	उद्धार कैसे हो ?— ५१ पत्रोंका संग्रह
278	सच्ची सलाह— ८० पत्रोंका संग्रह
280	साधनोपयोगी पत्र
281	शिक्षाप्रद पत्र
282	पारमार्थिक पत्र
284	अध्यात्मविषयक पत्र
283	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ
1120	सिद्धान्त एवं रहस्यकी बातें
680	उपदेशप्रद कहानियाँ
891	प्रेममें विलक्षण एकता
958	मेरा अनुभव
1283	सत्संगकी मार्मिक बातें
1150	साधनकी आवश्यकता

कोड	पुस्तक
320	वास्तविक त्याग
285	आदर्श भ्रातृप्रेम
286	बालशिक्षा
287	बालकोंके कर्तव्य
272	स्त्रियोंके लिये कर्तव्य-शिक्षा
290	आदर्श नारी सुशीला
291	आदर्श देवियाँ
300	नारीधर्म
271	भगवत्प्रेमकी प्राप्ति कैसे हो ?
293	सच्चा सुख और.......
294	संत-महिमा
295	सत्संगकी कुछ सार बातें
301	भारतीय संस्कृति तथा शास्त्रोंमें नारीधर्म
310	सावित्री और सत्यवान्
299	श्रीप्रेमभक्ति-प्रकाश— ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप
304	गीता पढ़नेके लाभ और त्यागसे भगवत्प्राप्ति— गजल-गीतासहित
623	धर्मके नामपर पाप
309	भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय- (कल्याणप्राप्तिकी कई युक्तियाँ)
311	परलोक और पुनर्जन्म एवं वैराग्य
306	धर्म क्या है ? भगवान् क्या हैं ?
307	भगवान्‌की दया (भगवत्कृपा एवं कुछ अमृत-कण)
316	ईश्वर-साक्षात्कारके लिये नाम-जप सर्वोपरि साधन है और सत्यकी शरणसे मुक्ति
314	व्यापार-सुधारकी आवश्यकता और हमारा कर्तव्य
1944	परम सेवा